मंज़ूर एहतेशाम

मेरी यादों के

रमज़ान

रमज़ान का महीना मुझे कितनी ही यादों से भर देता है। लगता है मैं अपनी बीती ज़िन्दगी को कहीं ऊपर और अलग से देख रहा हूँ। और हैरान हूँ कि ज़िन्दगी इतनी छोटी होने के बावजूद, कैसे शताब्दियों पर फैला-सा, विस्तार रखती है। दिमाग पीछे की ओर दौड़ता है। और एक ऐसे जहान में, ऐसे लोगों के बीच, पहुँचा देता है जिनके होते मुझे हर प्रकार की सुरक्षा का एहसास था। कच्ची दीवारों और कवेलू की छत का मकान। उसका फैला हुआ आँगन। अमरूद के तीन और एक अनार का पेड़। गर्मियों की शाम, सेहन और उसमें बिछे लकड़ी के दो तख्त, और एक बड़ा पत्थर का पटिया। सब खूब पानी बहा-बहाकर ठण्डे किए जा चुके हैं। और दस्तरख्वान पर चुनी इफ्तारी को घेरकर, मैं अब्बा, अम्मा, बड़े भाई साहब, आपा और छोटे भाई के साथ, इफ्तारी की तोप चलने का इन्तज़ार कर रहे हैं। बर्फ, खास तौर पर नर्मदा आइस फैक्ट्री से लाई गई है (भाई साइब साइकिल पर जाकर लाए होंगे)। और आपा ने दूध में रूह अफ्ज़ा मिलाकर शर्बत बनाया है। इफ्तारी के भजिए, पापड़ सब घर में तले गए हैं। बहुत सारा कटा हुआ सुर्ख तरबूज़ भी है।

मैं देखता हूँ, अब्बा की खूबसूरत, काली दाढ़ी को और अम्मा के दुआएँ बुदबुदाते होंठों को। आपा ने दुपट्टा कसकर सिर से बाँधा हुआ है। भाई साहब के चेहरे पर रोज़े की थकान की जगह एक ऐसी मुस्कुराहट है जैसे वे अपने आप से बहुत खुश हों। मैं और छोटा भाई अभी "छोटे" हैं। अभी हमारी रोज़ाखुशाई (रोज़ा रखने की शुरुआत) नहीं हुई है। बाकी सबका रोज़ा है। तोप चलेगी और इफ्तार के बाद सारे रोज़दार मगरिब की नमाज़ में लग जाएँगे। अब्बा और भाई साहब मस्ज़िद में और अम्मा और आपा घर में। हम दोनों के हिस्से में ढेर सारी इफ्तारी आ जाएगी! नमाज़ के बाद और खाने से पहले अब्बा और अम्मा, दोनों एक-एक पान खाना चाहेंगे क्योंकि दोनों को तम्बाकू की तलब लगी होगी। खाने के दौरान या उसके बाद कोई भी आ सकता है। कोई पर्देवाला हुआ तो आँगन में तने तार पर चादर डालकर ज़नाना-मर्दाना अलग-अलग कर दिया जाएगा। उसके बाद मर्द तराबियाँ पढ़ने मस्ज़िद चले जाएँगे, जबकि अम्मा और आपा घर में ही तराबियाँ पढ़ लेंगी। अम्मा और आपा रात जल्दी सो जाएँगे।

अलस्सुबह जागकर सेहरी की तैयारी भी तो करना पड़ती है। अब्बा देर रात तक पढ़ेंगे और सेहरी की जाग लगाकर सोएँगे। वैसे तो सेहरी के लिए जगाने वाले मियाँ साब फकीर तो रोज़ आते ही हैं। और क्या खूब आवाज़ में गा-गाकर लोगों को सेहरी के लिए बेदार होने की दावत देते हैं। अम्मा सेहरी और इफ्तारी में उनका भी हिस्सा बनाती हैं। जिसे लेकर वे कितने लहक-लहककर, घर और खानदानवालों को दुआएँ देते हैं।

अगले हफ्ते से ज़कात के पैसे बँटना शुरू हो जाएँगे और अम्मा तरह-तरह के पहचानवाले या अजनबियों से घिर जाएँगी। इब्राहिम दादा के ताँगे में अब्बा हमें मोतीलालजी की दुकान पर साल भर के और ईद के कपड़े दिलाने ले जाएँगे। जूते पहनाने का ज़िम्मा बड़े भाई साहब को सौंप देंगे। ईद के दिन हम अब्बा के साथ टहलते हुए जामा-मस्ज़िद जाएँगे, क्योंकि ईदगाह का फासला पैदल के हिसाब से ज़्यादा है।

जाने क्यों लगता है रमज़ान में समय की गति धीमी हो जाती थी, और बहुत सारे मुश्किल काम हो जाते थे। शायद यही रमज़ान की बरकत होगी।

जिस समय मेरी रोज़ाखुशाई हुई, मैं चौथी कक्षा में था। मेहमानों में मेरी सहपाठी, नसरीन और राहत भी थीं। जुमे का दिन था। हमारे पड़ोसी साबिर भाई ने मेरा जोड़ा बनाया था और खूबसूरत जूते भी उपहार में दिए थे। जुमे की नमाज़ के लिए अपनी मोटरसाइकिल पर वे मुझे जामा-मस्ज़िद ले गए थे। और फिर उनके कहे अनुसार, "रोज़ा बहलाने को", भोपाल टॉकीज में फिल्म दिखाई। कुछ बड़े होने पर पता चला वो रियर विण्डो नाम की, अल्फ्रेड हिचकॉक की क्लासिक फिल्म थी। उन्होंने तो मना नहीं किया था मगर फिल्म देखने की बात मैंने घर पर किसी को नहीं बताई थी!

मोटरसाइकिल पर वे मुझे जामा-मस्ज़िद ले गए थे। और फिर उनके कहे अनुसार, "रोज़ा बहलाने को", भोपाल टॉकीज में फिल्म दिखाई। कुछ बड़े होने पर पता चला वो *रियर विण्डो* नाम की, अल्फ्रेड हिचकॉक की क्लासिक फिल्म थी। उन्होंने तो मना नहीं किया था मगर फिल्म देखने की बात मैंने घर पर किसी को नहीं बताई थी!

कुछ समय बाद क्लास में, हिन्दी टीचर ने पूछा कि रोज़ा क्यों रखा जाता है। मेरा जवाब था, "ताकि खाते-पीते लोग भी जान सकें कि भूख क्या होती है।" वे इतनी खुश हुईं कि उनसे ऐसा रिश्ता बन गया जो आखिर तक रहा। मुझे मरने के बाद का तो अन्दाज़ा नहीं (हो भी कैसे सकता है?) मगर रमज़ान में लोग कुछ ऐसे हो जाते हैं कि उनका अच्छा-बुरा व्यवहार नमाज़, दुआ और रोज़ा रखने के अनुशासन में खुलकर सामने आ जाता है।

आज ज़माना बदल चुका है। मेरे बचपन के चैन, सुकून और बरकत अब्बा, अम्मा और उस ज़माने के साथ ही रुख्सत हो चुके हैं। आज से चन्द साल पहले तक रमज़ान की रातों में, शहर की गलियों में देर रात तक घूमना, पुराने वक्त और लोगों को याद करना मुझे बहुत अच्छा लगता था। वही मेरी रमज़ान के महीने की इबादत हुआ करती थी। अब भीड़, ट्रैफिक, शोरगुल और शायद बढ़ती उम्र के भी कारण यह इतना आसान और सम्भव नहीं रहा है।

कैसे उम्र बीत गई और कब मैं हरियाली में खेलते बचपन से कंक्रीट में सुरक्षित बुढ़ापे में बदल गया, पता ही नहीं चला। घर के बच्चों को मैं उनके ढंग से, रमज़ान में उत्साहित होते देखता हूँ। और दूर हवा में खो चुकी ट्रेन की आवाज़ कानों में गूँजती है। यह ट्रेन के आने का संकेत है या उसके यहाँ से रवाना होने का, मैं चाहकर भी तय नहीं कर पाता।

बहरहाल, तैयारियाँ जारी हैं। खोपरा घिसा जा रहा है, सूखा मेवा साफ किया, काटा-कुतरा जा रहा है। चन्द दिनों बाद, फिर, उसी उन्तीसा-तीसा के बहस-मुबाहिसे के बाद, चाँद दिखेगा और ईद होगी। सब नए कपड़े पहनकर, शुक्राने की नमाज़ अदा करने, इबादतगाहों की ओर रवाना होंगे...

मुझे और आपको भी यह आने वाली ईद मुबारक हो। मैं सच्चे दिल से दुआ करता हूँ – आमीन!

चित्र साभारः *भोपाल*, माध्यम

कुछ रमज़ान के बारे में ....

रमज़ान इस्लामी कैलण्डर वर्ष के नवें महीने का नाम है। यह चाँद के दिखने के हिसाब से चलता है। यानी जिस रात चाँद दिखाई दे उसके अगले दिन महीने की पहली तारीख होती है। इस तरह महीने में कम-से-कम 29 (उन्तीसा) और ज़्यादा-से-ज़्यादा 30 (तीसा) दिन होते हैं। वैसे चाँद दिखना रमज़ान ही नहीं साल के किसी भी महीने की शुरुआत के लिए ज़रूरी शर्त है। दूसरे महीने तो खामोशी से आते और चले जाते हैं लेकिन रमज़ान और उसके फौरन बाद मीठी ईद (ईद-उल-फितर) का चाँद देखने का सभी में उत्साह होता है।